4158

आचरण में आगम

जिनके दर्शन मात्र से मुनि-जीवन की अपूर्व प्रेरणा मिली,
उन परम प्रभावी गुरूवर्या श्री के चरणों में-

समर्पण

आज से लगभग आठ साल पहले पूज्या गुरूवर्या श्री के सान्निध्य में ही उनके चित्रों का एक संक्षिप्त संकलन प्रकाशित करने की उमंग, योजना और कल्पना चित्त में बनी थी। तब चाहा था कि उनके चित्रों को कुछ इस तरह के कालानुक्रम में संयोजित किया जाए कि उनकी जीवन-चर्या उनमें से जीवन्त-मुखरित हो उठे और उनके अद्वितीय निर्मल विचक्षण व्यक्तित्व से हम सबको प्रतिपल प्रेरणा मिले।

उस समय का वह स्वप्न, आज जब वे पार्थिव रूप में हम सबके बीच नहीं है, साकार हो रहा है। प्रयत्न है कि इन चित्रों के माध्यम से उनके अंतरंग की एक स्पष्ट और समन्वित झांकी हम सबको मिले, जिससे कि हम इस मनुष्य-जीवन के मर्म को समझकर उसे सार्थक-सफल कर सकें।

जहाँ तक इस चित्रावली को तथा उसकी विषय-वस्तु को संयोजित करने का प्रश्न है, साध्वी विद्युतप्रभा श्री, साध्वी हेमप्रज्ञा श्री तथा जैन कोकिला की लेखिका श्रीमती भंवरीबाई रामपुरिया व डा. नेमीचन्द जैन ने सहयोग दिया है। श्री ओसवाल पंचायती, श्री अजितनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर ट्रस्ट, नागपुर के कार्यकर्ता तथा श्री पुखराज कोठारी आदि सबने इसे सुन्दर और नयनाभिराम बनाने में जो परिश्रम और पुरुषार्थ किया है, वह अविस्मरणीय है।

उल्लेखनीय, इसमें मेरा संभवतः कुछ भी नहीं है, हाँ, इतना संयोग अवश्य है कि मैं भी इन सबके साथ अपनी विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित कर उनसे आत्मज्ञान प्राप्ति के लिए आशीर्वाद की प्रार्थना कर सकी हूँ।

साध्वि प्रभा श्री

परम्परा —

भगवान महावीर के शासन में खरतरगच्छीय-
पू.श्री सुखसागरजी म.सा. समुदाय
वर्तमान आचार्य पू.श्री.उदयसागर सूरिजी म.सा.
प्र.श्री. पुण्यश्री जी म.सा., प्र.श्री स्वर्णश्री जी म.सा.
प्र. श्री ज्ञानश्री जीम.सा., प्र. श्री. विचक्षणश्री जी म.सा.

-विचक्षण परिचय

जन्म : १९१२ ई., अमरावती
दीक्षा : १९२४ ई, पीपाड़
निधन : १९८० ई. जयपुर
पिता : मिश्रीलालजी मूथा
माता : रूपाबाई
घर का नाम : दाखी
दीक्षा-नाम : विचक्षण श्री
शिक्षा-गुरु : स्वर्ण श्री जी
दीक्षा-गुरु : जतन श्री जी
कुल शिष्याएं-४१
'जैन कोकिला' : १९४८ ई., नागौर
'व्याख्यान-भारती' : १९५९ ई., जयपुर
'व्याख्यान-वाचस्पति' : १९६१ ई., उज्जैन
'विश्वप्रेम-प्रचारिका' : १९६१ ई., मंदसौर
'समन्वय-साधिका' : १९६३ ई., रतलाम
प्रवर्तिनी-पदः १९६७ ई., विजयवाड़ा

चातुर्मासः कब, कहाँ ? (कुल ५६)

१९२४-भोपालगढ़
१९२५-जयपुर
१९२६-दिल्ली
१९२७-जयपुर
१९२८-जयपुर
१९२९-बीकानेर
१९३०-बीकानेर
१९३१-बीकानेर
१९३२-बीकानेर
१९३३-गंगाशहर
१९३४-दिल्ली
१९३५-हापुड़
१९३६-जयपुर
१९३७-पालीताना
१९३८-बड़ौदा
१९३९-पादरा
१९४०-मालवाड़ा
१९४१-जयपुर
१९४२-दिल्ली
१९४३-झुंझनू
१९४४-झुंझनू
१९४५-फतेहपुर
१९४६-बीकानेर
१९४७-बीकानेर
१९४८-गोगोलाव
१९४९-जैतारण
१९५०-जयपुर
१९५१-सैलाना
१९५२-खुजनेर
१९५३-इन्दौर
१९५४-पादरा
१९५५-पालीताना
१९५६-कोटा
१९५७-अजमेर
१९५८-जयपुर
१९५९-जयपुर
१९६०-केकड़ी
१९६१-मन्दसौर
१९६२-नीमच
१९६३-रतलाम
१९६४-इन्दौर
१९६५-अमरावती
१९६६-हैदराबाद
१९६७-मद्रास
१९६८-बैंगलोर
१९६९-चन्द्रपुर
१९७०-रायपुर
१९७१-दिल्ली
१९७२-दिल्ली
१९७३-दिल्ली
१९७४-दिल्ली
१९७५-जयपुर
१९७६-मालपुरा
१९७७-जयपुर
१९७८-जयपुर
१९७९-जयपुर

संयम की ओर 'दाखी बाई'

पीपाड़ सिटी (राज.)- वि.सं. १९८०

"वैराग्य रंग" "अंग अंग"

अमरावती शहर में श्री मिश्रीमलजी मूथा व उनकी धर्मपत्नी रूपाँदेवी के घर वि. सं. १९६९ की आषाढ़ कृष्णा प्रतिपदा के दिन एक बालिका ने जन्म लिया। जन्मकुण्डली बनी तब ग्रह-दशा देखकर ज्योतिषी स्तब्ध रह गया। उसने कहा, 'इस बालिका का जन्म तो किसी क्षत्रिय-कुल में होना था तभी इसका यह राजयोग सफल होता। संभवतः ग्रह-बल इसे एक परम योगिनी ही बना दे।' बालिका का नाम 'दाखी' रखा गया।

उन दिनों बाल-विवाह की प्रथा थी। दाखी का वाग्दान माण्डोरी के एक श्रीमंत परिवार के बालक पन्नालाल मुणोत से कर दिया गया। नन्ही बालिका को वस्त्र-आभूषणों से लाद दिया गया पर विधि को यह सब कहाँ मंजूर था।

वैराग्य ज्योति प्रज्वलित हुई। स्वजनों-परिजनों ने अनेक प्रकार से उनका मन डिगाने का प्रयास किया। दादाजी तो न्यायालय तक जा पहुँचे। निंबाज के ठाकुर ने पूछा, "बेटी तुझे किसी ने सिखाया-बहकाया तो नहीं है?" दाखी ने कहा, "नहीं, आपकी धारणा निर्मूल है। मै अपनी अन्तःप्रेरणा से ही संयम ग्रहण कर रही हूँ।"

ठाकुर की तोप का भय भी उन्हें डरा न सका। मात्र ११ वर्ष की उम्र में उन्होंने संयम स्वीकार किया। तदनंतर वे विचक्षण श्री जी के नाम से प्रख्यात हुईं। यह उनकी अन्तःप्रेरणा का ही फल था- जिसने उनको 'दाखी' से 'विचक्षण' बना दिया।

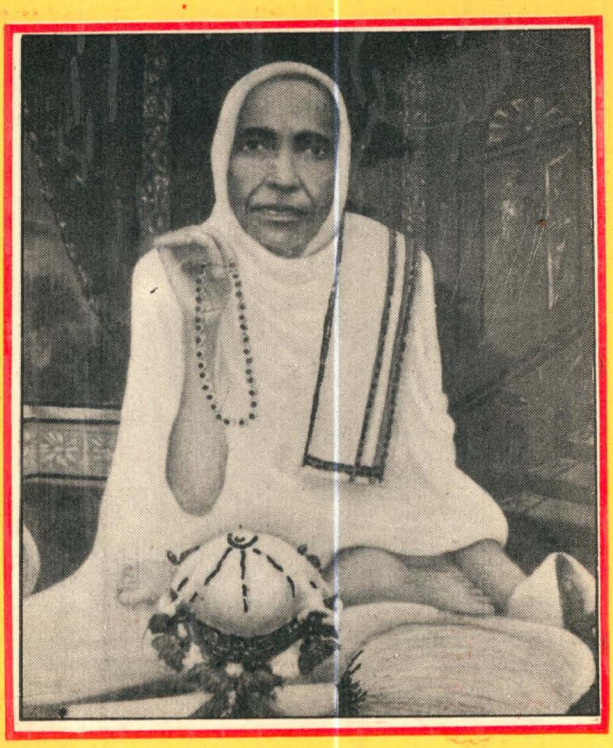

पूज्या श्री सुवर्ण श्री जी महाराज सा.

कुशल जीवन-शिल्पी

संवत् १९२७, ज्येष्ठ कृष्णा द्वादशी (शुक्रवार) को अहमदनगर निवासी सेठ योगीदास की धर्मपत्नी दुर्गादेवी ने एक कन्या को जन्म दिया। नाम रखा गया 'सुंदरबाई'।

शुभलग्न में श्री प्रतापमलजी के साथ सुंदरबाई का विवाह सम्पन्न हुआ। सम्पन्नता व भौतिक सुख सुंदरबाई को भाये नहीं। सास का प्यार व पति का प्रेम भी उन्हें सांसारिक जीवन में रोक नहीं पाए। एक सुसंस्कारी बाला से पति का विवाह कराके वे त्याग-पथ पर अग्रसर हो गयीं।

पुण्यमूर्ति प्र. श्री पुण्य श्री जी म. सा. के चरणों में दीक्षित हुईं। सुवर्ण श्री जी नाम रखा गया। ज्ञान के साथ तप मणिकांचन योग था। शिक्षा-प्रचार में विशेष रुचि थी। श्राविकाश्रम के रूप में उन्होंने जयपुर में वीर बालिका महाविद्यालय का बीजारोपण किया जो प्रगतिशील व ख्यातिप्राप्त संस्था है।

आपका जीवन एक आदर्श था। प्रवर्तिनी पद पर रहकर गच्छनेतृत्व आदि दायित्वपूर्ण कार्यों का निर्वाह करते हुए उनकी जप-प्रवृत्ति विशेष थी। पूज्या श्री विचक्षण श्री जी म. सा. को आप जैसी कुशल जीवन-शिल्पी का योग गुरू के रूप में प्राप्त हुआ। स्व-पर भेद विज्ञान की जो गहरी पैठ उनकी थी, उसी का पाठ श्री विचक्षण श्री जी महाराज को मिला जिसने अनगिनत व्यक्तियों के जीवन को नई ज्योति प्रदान की।

पूज्या श्री जतन श्री जी महाराज सा.

दीक्षा गुरु

साध्वीजी श्री जतन श्री जी महाराज सा. प्रवर्तिनी श्री सुवर्ण श्री जी महाराज सा. की सुयोग्य शिष्या थीं। उत्कृष्ट त्याग-भाव, शुद्ध-आचार, परिष्कृत-विचार, नेतृत्व-शक्ति आदि गुणों से युक्त तेजस्वी व्यक्तित्व की स्वामिनी थीं। अनुशासन के साथ वात्सल्य का संयोग होने से वे साध्वियों के जीवन-विकास में सहयोगी बनती रहीं। पीपाड़ गाँव में रूपाँबाई एवं दाखीबाई की दीक्षा श्री जतन श्री जी म. सा. के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुई जो विज्ञान श्री जी व विचक्षण श्री जी के नाम से प्रख्यात हुईं। ऐसे सरल व्यक्तित्व को पाकर वे भी कृतकृत्य हो गईं।

दृढ़-व्रता

जन्मदात्री

साध्वी श्री विज्ञान श्री जी उनकी माता थीं। 'रूपाँबाई' श्री विज्ञान श्री जी का गृहस्थ-नाम था। साध्वी श्री विचक्षण श्री जी उनकी बेटी थीं। गृहस्थ नाम 'दाखी' था। यानि रूपाँबाई दाखी की जननी थीं। यह हुआ संसार, पर मानिये संसार के पार भी कुछ है। उसके पार बहुमूल्य जो कुछ है-उनमें से जन्मीं साध्वी श्री विज्ञान श्री जी, साध्वी श्री विचक्षण श्री जी। विज्ञान ने विचक्षणता को जन्म दिया। पचपन वर्षों की सुदीर्घ संयमयात्रा में साध्वी श्री विचक्षण श्री जी उनके साथ रहीं। साध्वी श्री विज्ञान श्री जी वज्रसंकल्पा थीं। संयमी साधना में वे प्रतिपल सतर्क थीं। जरा भी शिथिलता उन्हें पसन्द नहीं थी। जो अविचलता और दृढता माँ में थी- वही कई गुना होकर खुली-उघड़ी पुत्री में। यही वजह थी कि विज्ञान श्री जी विचक्षण साधना का एक ऐसा दीपक मानवता के आँगन में प्रज्वलित कर गयीं, जिसकी अकम्प लौ आज भी हमारी राहों में रोशनी बिखेरे हुए है।

गुरु-सेवा में तत्पर

बीकानेर-ई.सन् १९३२

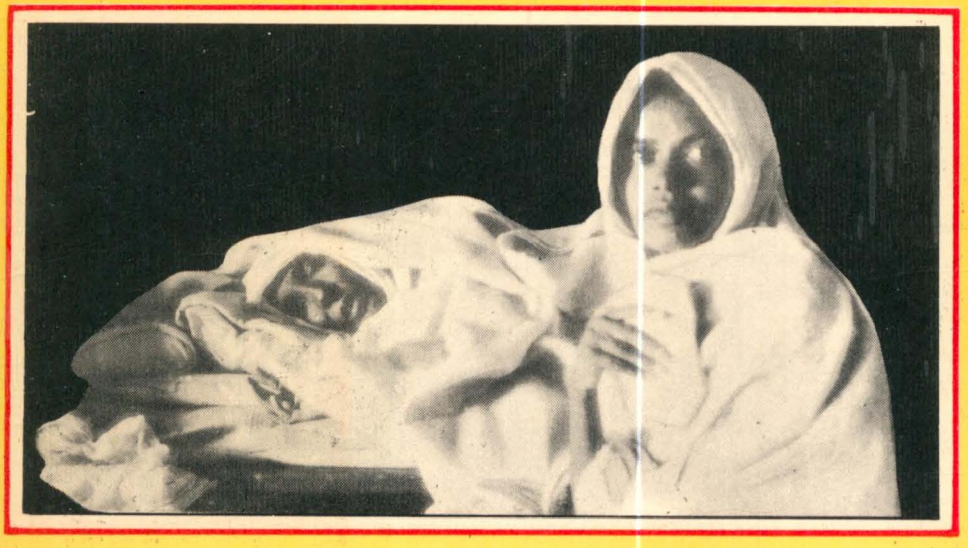

सतत जागृत

गुरूवर्या श्री सुवर्ण श्री जी म. सा. के शरीर पर वृद्धावस्था के साथ-साथ श्वास की व्याधि जोर पकड़ चुकी थी। भयंकर कष्ट था। फिर भी उस आत्मज्ञानी साधिका ने सब कुछ समता भाव से सहा, इस तरह कि मुख पर विषाद की कोई रेखा न थी, सर्वत्र शान्ति ही शान्ति थी।

साध्वी श्री विचक्षण श्री जी को गुरूसेवा, संयम, साधना एवं स्वाध्याय के सात साल ही बीते थे। सेवा और आज्ञापालन उनकी साधना के मूलमंत्र थे। गुरूसेवा में वे दिनरात लगी रहती थीं। सेवा, साधना, स्वाध्याय सभी बिनाँ प्रमाद चल रहे थे।

गुरूवर्या श्री सुवर्ण श्री जी म. सा. प्रायः अपने अनुभवों का अनमोल खज़ाना उनके सामने खोल देती थीं। इस खजाने से उन्हे जीवन-निर्माण में बहुत सहायता मिली। गुरूकृपा की ऐसी रत्नवृष्टि विरलों पर ही होती है।

जैसे माँ का असर बेटी में आए बिना नहीं रहता- वैसे ही गुरू-गौरव शिष्य को मिले बिना नहीं रहता है। गुरूवर्या के अल्प समय के सान्निध्य से भी उन्होंने जीवन-विकास के समस्त पहलूओं को आत्मसात कर लिया। उनका निर्मल व्यक्तित्व उभरता गया और जिन-शासन के क्षितिज पर एक ऐसा ज्ञानसूर्य चमकने लगा, जिसने दिग्दिगन्त में अपने प्रकाश को बिखेर कर असंख्य पीडित-संत्रस्त मानवों को जीवन-राह दिखाई।

स्थान पादरा
संवत् १९९६,

ज्ञान-गंगा

गुरूवर्या श्री का यह चित्र पादरा चातुर्मास का है। पादरा गुजरात की संस्कारधानी है, लोग प्रबुद्ध एवं स्वाध्याय प्रेमी है। जब वे पादरा पहुँचीं, तब वहाँ योगिराज श्री बुद्धिसागरसूरिजी के सम्पर्क में आये, कई श्रावक उपस्थित थे। अध्यात्म-रुचि तो वहाँ सहज ही थी। गुरूवर्या श्री की आध्यात्मिक प्रेरणा ने उसे और समर्थ बना दिया।

वहाँ रातमें श्रावकों का दो घण्टे नियमित स्वाध्याय होता था। जबसे उनका समागम हुआ तबसे मण्डल दिनमें उनके सान्निध्य में ही स्वाध्याय करता था। जो भी शंकाएँ रखी जातीं, उनका वे सहज समाधान प्रस्तुत करतीं थी। एक अपूर्व ज्ञान-सत्र चलता था। उनकी मति-विचक्षणता देख प्रायः सभी चकित रह जाते थे। जिस सरलता से गूढ़तम विषयों की समीक्षा वे करतीं, उन्हें समझातीं, वैसा अन्यत्र दुर्लभ था। वे आगम के रहस्यों को जानने में अहर्निश लगी रहतीं। सत्य को वे ग्रन्थों में से ढूंढ-ढूंढकर जीवन में प्रगट करती थीं। उनके इसी प्रयोग ने उनको विचक्षण बना दिया।

आचरण में आगम

जीवन्त-जयणा

गुरूवर्या श्री विचक्षण श्री जी म. सा. उदारचेता, सहिष्णु एवं क्रान्तदृष्टा युग-विभूति थीं। उनकी वाणी में ऊर्जा थी, ऐसी अपूर्व-जो चुम्बक की तरह हर छोटे-बड़े को अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। उनके मुख से निःसृत सीधे-सरल शब्दों की नाव में बैठा श्रोता-समुदाय कब एक तट से दूसरे तट पर पहुँच जाता, इसका उसे भान ही नहीं रहता था। वे जीवन-पारखी थीं। जीवन-शिल्पी थीं। उन्होंने जैन-धर्म को सिर्फ जाना ही नहीं था, जिया भी था।

अहिंसा का विवेक उनमें प्रतिपल जागृत रहता था। चलने में, बोलने में, आहार, वस्त्र के ग्रहण और उपभोग में वे अहिंसा का मन से वचन से और क्रिया से पूरा-पूरा ध्यान रखती थीं। उनकी वात्सल्यमयी दृष्टि आनेवाले के मन को बाँध लेती थी। विषमता में भी मुस्कराते रहना-उनके व्यक्तित्व की एक महान विशेषता थी। स्वाध्याय से छन-छनकर निकले उनके हर वचन, व्यक्ति के आध्यात्मिक-विकास के लिए प्रेरक-सूत्र बन जाते थे। उनका जीवन एक खुली पुस्तक थी।

दादावाड़ी, जयपुर-वि.सं. २०१५

अरिहंत उपासिका

आँखों में अर्हम्, अधर पर अर्हम्, अंगुलियों पर अर्हम्

खुला आकाश, प्रसन्न मन और सवेरे की खिली धूप। सूरज की किरणें धरती पर उतर रही थीं और साध्वी श्री आत्मबोध के प्रांगण में खड़ी थीं। चिंतन की चारुता से चेहरे पर अद्‌भुत तेज झलक रहा था।

सहिष्णुता और आत्मानुसंधान, देह और विदेह में पार्थक्य-बोध उनकी तपश्चर्या की बहुमूल्य उपलब्धियाँ थीं। जब देखें, जहाँ देखें उनकी आँखों में अर्हम् की परम ज्योति छलकती रहती, अधर पर अर्हम् की अलौकिक मुस्कराहट खिली रहती, और अँगुलियों पर अर्हम् का स्मरण अविराम चलता रहता। वस्तुतः वे संसार में भी संसार से अलिप्त थीं, कमल-दल पर पड़ी जल-बूँद की तरह।

जयपुर, दादावाड़ी
सन् १९५९

यही है वह डगर

राह कठिन है, देख लो तुम सब

साधु ईर्यासमिति का धारक होता है। वे थीं। चार हाथ आगे की ज़मीन देखना तो उनकी सहज-चर्या थी, किन्तु वे इससे बहुत आगे निकल चुकी थीं। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों में वे बहुत दूर तक देख लेती थीं। जब भी किसी की दृष्टि उनके विचक्षण नेत्रों पर चली जाती थी, उनमें उसे वह सब दीख पड़ता था- जो मुक्ति के लिए उपादेय है। उनकी आँख सीधे अपने परम लक्ष्य पर थी। वे मिलती सबसे थीं, धर्मचर्चा भी करती थीं, किन्तु अपने लक्ष्य को एक पल भी नहीं भूलती थीं। जहाँ भी वे जातीं, जब भी वे जातीं, किसी भी समुदाय में वे होतीं, कहा करतीं: 'देखो, सच्ची डगर यही है, है यह कठिन, पर चलना इसी पर है। यह वीतरागता, संयम और आत्मशुद्धि की डगर है।'

इसी कंटकाकीर्ण डगर पर वे जिंदगी भर मुस्करा कर चलती रहीं।

अमर हुई अमरावती

अमरावती, सन्-१९६५

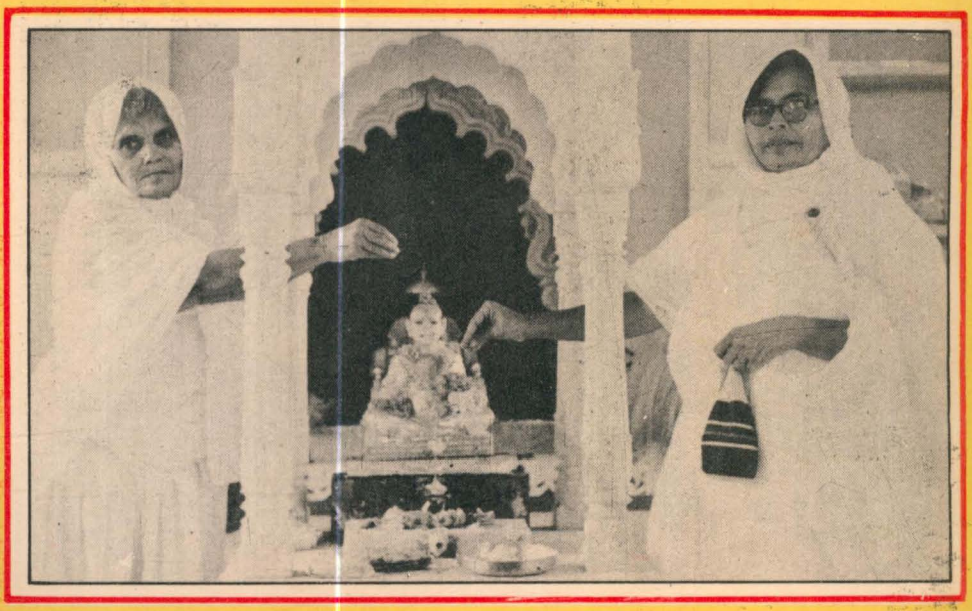

"तस्मै श्री गुरवे नमः"

चित्र में वे दादा जिनदत्तसूरिजी की प्रतिमा की प्रतिष्ठा के प्रसंग पर वासक्षेप डालती दिखायी दे रही हैं।

वे कहा करती थीं- प्रभु महावीर की वाणी हम तक पहुँचाने में आचार्यों का असीम उपकार है। हमारे गुरुजनों ने हमें जो दिया है वह हमारी अत्यंत मूल्यवान विरासत है। क्या हम इस गौरवशाली धरोहर की रक्षा नहीं कर सकते? क्या हम इसे आत्मसात कर एक सजल मेघ की तरह संत्रस्त मानवता के हृतल को शीतल और हराभरा नहीं कर सकते?

पूजा को वे आत्माराधना और सामाजिक जागृति का बहुत अचूक साधन मानती थीं। उन्होंने बड़ी सावधानी और विवेक से समाज को जगाया, कुरीतियों को भगाया और गाया जागृति का मंगलगीत इसतरह कि हम धन्य-धन्य हो उठे।

मद्रास ई.-सन् १९६७

जिन-शासन प्रभाविका

एक बनें-नेक बनें

उन्होंने प्रवचन में कहा, "आज हम बाहर से जितने व्यापक होते जा रहे हैं, अन्दर से उतने ही संकुचित होते जा रहे है। इसीलिए हमारा गौरव ध्वस्त हो रहा है। अपने आपसी झगड़ों में ही हम अपनी शक्ति को नष्ट कर रहे हैं।"

बिखरे हुए मोती कभी कण्ठहार नहीं बनते, छितराये हुए तिनकों से सफाई नहीं होती, जहाँ-तहाँ पड़ी अनुशासनहीन ईंटें मकान नहीं बना सकती, सूत के अलग-अलग पड़े तन्तुओं से कपड़ा नहीं बनता। इसलिए हमें एक सूत्र में बँधकर अपनी शक्ति को प्रकट करना चाहिए। याद रखिये, हम भगवान महावीर की सन्तान हैं, हम सौतेले नहीं, सगे भाई-बहिन हैं, इसलिए एक बनें, नेक बनें और कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ें।

साम्प्रदायिक एकता एवं सद्भाव को संस्थापित करने में उनके प्रयास अविस्मरणीय हैं।

नाम-स्मरण

दादावाड़ी- दिल्ली, १९७३

अनुभूति 'मैं' की

नामस्मरण उनका अहर्निश चलता था। सोते-जागते, उठते-बैठते अविराम नाम-स्मरण की शलाका से आत्म-बोध की अदम्य-अकम्प दीप्ति-लौ को वे अखण्ड प्रज्वलित रखती थीं। नाम-स्मरण एक ऐसा साधन था, जिसके द्वारा उनके जीवन के अणु-अणु में समता अवतरित हुई थी। वे एक-एक पल 'मैं' (आत्मा)को जागृत रखती थीं। 'मैं' में होना और विशुद्ध 'मैं' होना, दोनों अलग-अलग अनुभूतियाँ है। 'मैं' होकर वीतराग होते है और 'मैं' में होकर अहंकारी होते है। वे अहम् में नहीं अर्हम् में प्रविष्ट हुई थीं। नाम-स्मरण उनके लिए गुण-स्मरण था। वे वीतरागता का स्मरण करते-करते स्वयं वीतरागता की ओर अग्रसर हो रही थीं। अरिहंत-जाप करते-करते उन्होंने कर्म-शत्रुओं को वश में कर लिया था और इस तरह वे अपना भव-ताप मेटने लगी थीं। नाम-स्मरण ने उनकी दृष्टि को अंतरंग में मोड़ दिया था। और वे उस ओर बढ गयी थीं- जिस ओर रोशनी का सागर लहरों पर लहरें चढाये उन्हें आमंत्रित कर रहा था। वे निज में निज की अनुभूति करती थीं।

कमल खिल उठा!

दिल्ली-ई-सन् १९७३

तुझ स्मरण मुझ प्यारो

जैसे कमल सूरज की किरणों का स्पर्श पा कर खिल उठता है वैसे ही नाम-स्मरण रूपी सूरज की रश्मियों का स्पर्श पाकर उनका साधनारत मुख-कमल खिल उठता था। वे उल्लास में डूब जाती थीं उन क्षणों में।वे रसना की चेरी नहीं थीं– रसना उनकी चेरी थी। रसना जानती थी कि वे रस-ना अस्वादव्रती है, उन्हें खाने-पीने में कोई रस नहीं था, रस था मात्र अर्हम्-स्मरण में- उसे आठों पहर जीवन में इसतरह प्रकट करने में कि दिखायी देने लगे चारों ओर ये तथ्य कि 'शरीर और आत्मा दोनों की स्वतंत्र सत्ताएँ हैं।' शरीर, शरीर है, आत्मा, आत्मा है, दोनों की अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं। उनके इस चिंतन ने माला को जीवन्त कर दिया था। माला कृत-कृत्य हो उठी ठीक वैसे ही जैसे कभी केवट श्रीराम को नाव में बिठाकर हुआ था। एकसौ आठ मनकों वाली इस नाव पर बैठ वे प्रभु-स्मरण का पतवार ताने निश्चिन्त भाव से भव-सागर पार कर रही थीं। मुस्कराहट इतनी कि उसका स्पर्श पाकर माला भी मुस्करा उठी थी।

चिन्तन मुद्रा

जयपुर, उपाश्रय- सन् १९७५,

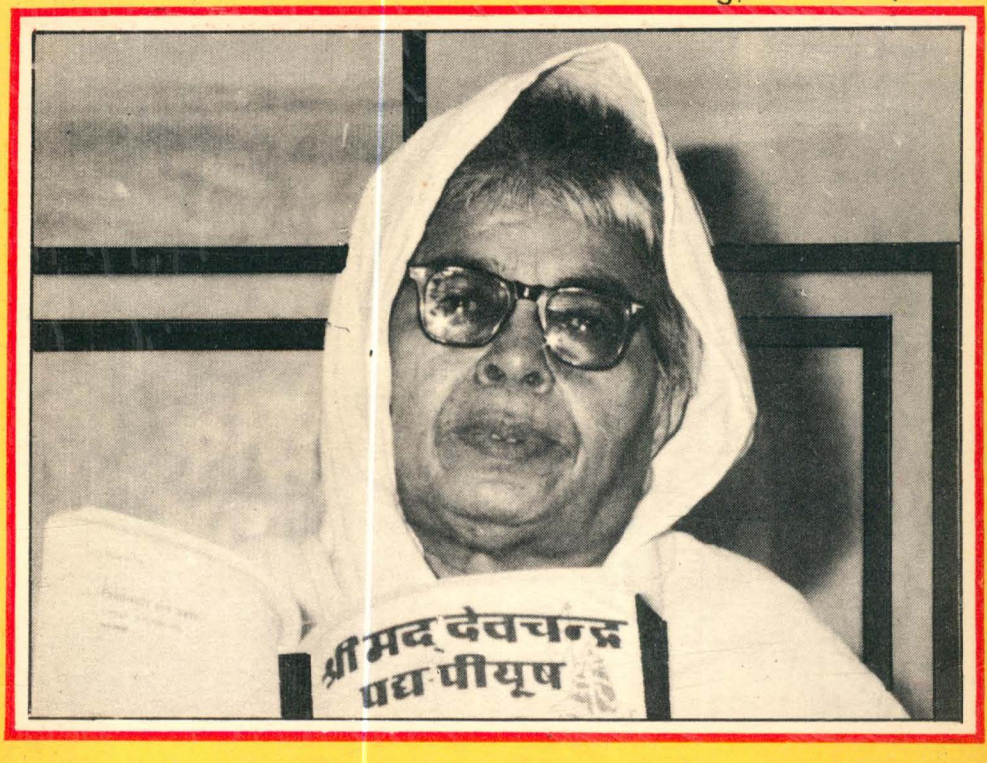

ज्ञान से साक्षात्कार

स्वाध्याय तप है। स्वाध्याय अंतरंग तप है, ऐसा तप जो व्यक्ति के जीवन का आमूल परिवर्तन कर देता है। साध्वीजी श्री के जीवन का अधिक समय स्वाध्याय में व्यतीत हुआ। उनके लिए स्वाध्याय का अर्थ पुस्तक-पठन या ग्रन्थावलोकन ही नहीं था, अपितु वह उनके लिए था-जीवन के मर्म को समझाने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य, एक रचनात्मक कला, एक भावनापरक व्याकरण। वे अपनी दिनचर्या का, अपने दैनंदिन क्रिया-कलाप का बड़ी सावधानी से स्वाध्याय करती थीं। वे खोजती थीं निरंतर-शरीर में उस अशरीरी को जो उनकी साधना की अन्तिम मंजिल थी। उन्होंने श्रीमद् देवचन्द्रजी, कविवर आनन्दघनजी तथा चिदानन्दजी जैसे परम योगियों की वाणी को अपने जीवन में विकसित किया। भगवतीसूत्र हो या उत्तराध्ययन, वे मात्र उसे पढती ही नहीं थीं बल्कि जीवन में प्रकट करती थीं– इसतरह कि सभी मनुष्य उनके इस स्वाध्याय के अमृत से लाभान्वित हो सकें। सत्संग, प्रवचन, ग्रंथ-वाचन वैयावृत्य आदि स्वाध्याय के सभी आयाम उनके जीवन में प्रकट थे।

आशीर्वाद

जयपुर, सन् १९७७,

धर्मलाभ

इधर उधर सर्वत्र दर्शनार्थी खड़े हैं और उनकी आशीषमयी हथेली उन सब पर एक सजल बदली सी छा गयी है, शायद कहती हो, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की आराधना करो। संकट में मुस्कराओ। निराकुलता का कण्ठहार धारण करो। इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म को यों ही व्यर्थ मत करो। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में सुमेरू पर्वत की तरह सुस्थिर और अविचल रहो। घूम लिये बहुत कोल्हू के बैल की तरह, अब अपना लक्ष्य समझो और उस पर तेजी से आगे बढो। पहचानो स्वयं को और पाओ उस परम लक्ष्य को जो चिदानन्द चैतन्यमय अनुभूति को देने वाला है।

उद्‌बोधन

मालपुरा, सन् १९७६

यह है, यहाँ है, जानो इसे।

ठीक उस सचाई की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा: संसार असार है। कौन किसका हुआ है यहाँ? सब कर्माधीन है यहाँ। मेले, हाट-बाजार सा संयोग है। इन्हें अपना मानोगे तो दुःख उठाओगे। राग की प्रचण्ड आग में जल-झुलस जाओगे। इस सत्य को जानो। स्वयं को पहचानो। जानो यह कि यहाँ मेरा कुछ भी नहीं है, जिसे मै भूल से अपना मान रहा हूँ, वह नश्वर और 'पर' है। समझो कि बस एक आत्मा तेरा है, बाकी सब बिछुड़ने वाला है। सब मुसाफिर हैं और एक लम्बे अन्तहीन सफ़र पर निकले हैं। इनमें से कोई कहीं, कोई कहीं रुक जाने वाला है। अतः तू अपना लक्ष्य तय कर यह मान कर कि कोई साथ देने/जाने वाला नहीं है। तू बन स्वयं का दीपक और कर स्व-पर प्रकाशत्व स्वगुण का चिंतन-जो आत्मानुभूति का सही मार्ग है।

ऐसा है संसार

मालपुरा-सन् १९७६

हाथ पसारे जाएगा

उनकी एक विशेषता थी कि जो उनके चित्त में होता था वह उनके चेहरे पर, और उनके शब्दों में छलक-छलक पड़ता था। वे अक्सर कहा करतीं: यह शरीर तो श्मशान की धरोहर है, फिर इतनी हाय-हाय और भागमभाग क्यों? कौन है तेरा? यह धन-दौलत, यह महल-मकान, यह बाग-बगीचे, यह जन-परिजन? दीवाने देखना, देखना एक दिन ये सब तुझ पर एक सफेद चादर तानकर 'राम नाम सत्त' कर देंगे। इसलिए सँभल, चेत उठ और देख कि मृत्यु प्रत्यक्ष तेरे सामने खड़ी है। डर मत इससे। सत्य को समझ और खोज़ इस सम्यक्त्व को कि, शरीर भंगुर है, जल का बुदबुदा है, अँजलि का जल है, बादलों में कौंधती बिजली है किन्तु आत्मा अमर है, नित्य है, शाश्वत है। मत भूल कि सब इस सचाई को भुलाकर खाली हाथ जाते हैं, क्या तू भी ऐसे ही जाना चाहेगा? भले प्राणी! अपने मन की मुट्ठी में जो चिन्तामणि है, उसे संभाल, और तेजी से कदम उठा।

पत्रोत्तर

मालपुरा-सन् १९७६

आत्म-साधिका के स्वानुभूत उत्तर

वे पत्रों के उत्तर लिखा करती थीं, हर पत्र का नहीं, अपितु जरूरी होने पर, या तो मूल पत्र के हाशिये पर या कागज के किसी टुकड़े पर। उनका विश्वास अपरिग्रह एवं मितव्यय में था: कम से कम खर्च, अधिकतम कार्य- उनका जीवन मंत्र था। वैसे सामान्यतया वे पत्र कम ही लिखती थीं, किन्तु मृत्यु, गंभीर बीमारी, सामाजिक संस्थाओं का मार्गदर्शन, गुरूजनों को पत्र वे अवश्य देती थीं। सस्ती कलम, जीवन को रोशनी देने वाले शब्द।

उनके जो पत्र मिले हैं उनमें भीतर झांकने से मिलता है उनका आध्यात्मिक चिन्तन, विनय, आत्मनिरीक्षण, निरभिमान, आकिंचन्य। उनकी कुछ पत्र-पंक्तियाँ हैं:-

'आत्मधारी बाहर नहीं है, पुस्तक में नहीं है, स्वयँ में है', 'देह में चैतन्य चिदानन्द बैठे हैं', 'जन्म से खेल चालू होता है और आत्मा मरण से खेल ख़त्म करता है, यही अनादि रीति है', 'जहाँ पुरुषार्थ मंद होता है, वहाँ सफलता भी मंद होती है, स्वाध्याय करते रहना, आत्मशत्रु खदेड़ते रहना', हम आनन्द में हैं, खूब चिन्तन करें। देह-आत्मा इन दो का मन्थन करके ही देह से एक दिन आत्मा स्वहिस्सा उठा सकेगा, इसके साथ भागीदारी रखकर खोया ही खोया है, अब नहीं खोना है।'

आत्म-निवेदन

मालपुरा, सन् १९७६

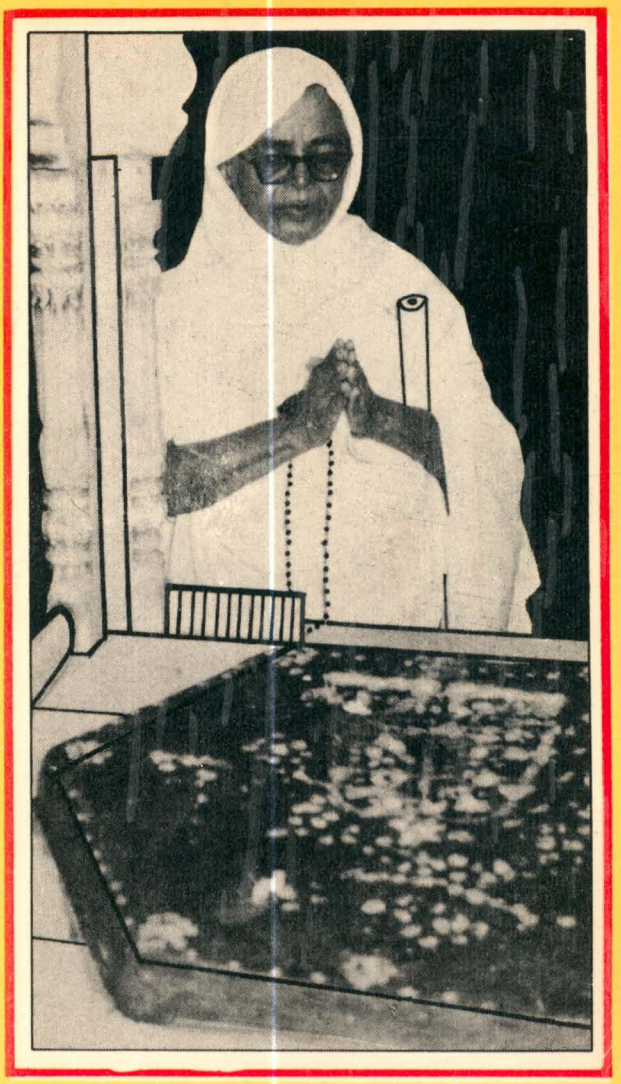

मुझे ऐसी शक्ति दो

प्रातःवन्द्य गुरू-चरण के सन्मुख करबद्ध वे खड़ी हैं। प्रार्थना के विनीत स्वर हैं, गुरूवर मुझे समर्थ बनाओ, इतना समर्थ और सशक्त कि उऋण हो सकूं- इस कर्म-साहूकार के कर्ज से, क्योंकि जब कोई साहूकार किसी कर्ज़दार के पास वसूली के लिए आता है और यदि वह आर्थिक दृष्टि से मजबूत है तो पहले तक़ादे पर ही सारा कर्ज़ चुका देता है और निराकुल ऋणमुक्त हो जाता है। लगता है उसे कि सिर पर से कोई बोझ उतर गया है। मुझे भी ऐसी शक्ति दो गुरूवर कि जब कर्म वसूली पर निकले हैं तो मैं भी तप और संयम के बल पर उनकी पाई-पाई चुका सकूं यही मेरा निवेदन है, यही मेरी भक्ति है और यही है अन्तिम लक्ष्य।

सौम्य-हास

मालपुरा, सन् १९७६

"भीतर भी ऐसी ही मुस्कराहट है।"

हाथ में सुमरनी, उठते-बैठते, चलते-फिरते सर्वत्र सदैव प्रभु-स्मरण। प्रभु-स्मरण में से कल-कल करती उमड़ती करूणा की गंगा, गंगा में से उठती मुस्कराहटों की लहर-पर-लहर। कृतकृत्य हो उठता है दर्शनार्थी उन्हें पाकर, उन्हें देखकर। लगता है जैसे कोई जन्म-जन्म की एक और साधिका-इस परम साधिका के भीतर बैठी मुस्करा रही है, जिसकी आभा फूट-फूट पड़ रही है दिग्दिगंत में। कौन संभाल पायेगा इस परिसीम सौम्य मुस्कराहट को - जो धन्य करती है धरती को, गगन को, मनुष्य और मनुष्यता को।

समय आ गया है

मालपुरा- सन् १९७६

"उठो, जागो, बढाओ कदम"

सुनो! ये क्षण सोने के नहीं- जागने, उठने और कदम बढाने के हैं। बढाओ चरण और सेवा करो देश की, समाज की, धर्म की, मानव की, मानवता की। बँध-जाओ प्रीति और एकता की डोर में, छोड़कर सम्प्रदाय का जहर तोड़कर परस्पर घृणा की जंजीर और मोड़कर अपना रागी मन।

कुँए का पानी-पानी है पानी था, पानी रहेगा, क्या फर्क पड़ेगा उसमें पानी 'होने' में- यदि उसे लोटा, बाल्टी, नल, चड़स आदि द्वारा ढो कर कहीं भी रख लिया गया हो? इसलिए समझो, यदि हमारा हृदय उदार और प्रीति-रस में निमग्न है, हमारे शब्द मधुर हैं तो फिर कड़वापन या शत्रुता का प्रश्न ही कहाँ है?

उठो! अपने-पराये का भेद छोड़ो। बातें करने का वक्त अब नहीं है, कमर कसो और मैदान में उतर पड़ो, जुट जाओ प्राणि-मात्र की सेवा में।

मालपुरा- सन् १९७६

क्या कहते हो ?

इस चिन्तामणि को ... फिर खो बैठूँ?

संसार की असारता पर सोचते-सोचते अनायास उनकी मुट्ठी खुल गई, लगा जैसे मुट्ठी में से धर्म का कोई मर्म ही सभा में आ खड़ा हुआ है, शायद यह कि 'मनुष्य-जन्म दुर्लभ है, जाग उठ, कमर कस और देख कि तू इसका क्या उपयोग कर रहा है? आश्चर्य है कि हीरे जैसा अमूल्य मनुष्य-जन्म पाकर भी तू उसे कंकड़ समझकर व्यर्थ खो रहा है। छोड़ यह अज्ञान, छोड़ यह मूढ़ता, छोड़ यह मोह स्मरण कर सन्तों व साधकों के ये शब्दः 'संसार में से सार-सार ले ले, निस्सार छोड़ दे।' मनुष्य-जन्म की दुर्लभता को समझ और समझ कि ध्रुव, शाश्वत, नित्य क्या है? मरणशील, अस्थिर, भंगुर और विनाशी क्या है? इस अभेद्य आवरण को चीर कर उस तत्व को प्राप्त कर जो अमर है, अविनाशी है, शाश्वत है। समझ संयोग और वियोग, हेय और उपादेय, देह और विदेह के अन्तर को-उनके मर्म को। यही है तेरा चरम उद्देश्य – यही है तेरी पावन मंजिल।'

असार है संसार

मालपुरा- सन् १९७६

क्या खूब, हमने बाँधा है खुदको, खुद ही

कर्मों का इतना सघन संचय? कब हुआ यह, कैसे हुआ यह? सोचा कभी हमने? कौन जकड़ रहा है हमें इन जंजीरों में?

सुनो यह कोई दूसरा नहीं है, हम ही हैं। हमारी राग-द्वेष परिणति से ही हम कर्मों से बंध रहे हैं। कर्म तो जड़ हैं, पुद्गल हैं। वे बेचारे हमें क्या बाँधेंगे। कैसा हमारा अज्ञान-कर्मों को आमंत्रण देने वाले हम और दोष मढते हैं उन पर। हम चाहें तो कर्मों की इस श्रृंखला को तोड़ सकते हैं। चाहिए हमारी सावधानी। रहें हम बन्ध में सावधान और रखें उदय में समभाव। राग-द्वेष हमारा स्वभाव नहीं है। हम तो आत्मा हैं। सिद्ध, बुद्ध, निश्चल, निराकुल।

उठो जागृत होओ, विश्वास करो, भ्रान्ति को भगाओ। सत्य को जानो वस्तु-स्वरूप को समझो। सुनो पिंजरे का द्वार खोलो और उड़ चलो समता के सुनहले नभ में- वहाँ, जहाँ हँस मुस्करा रहा है।

मालपुरा- सन् १९७६

रुको, सोचो!

जियो; सिर्फ जीने के लिए नहीं, जानने के लिए भी।

घूम रहा है कर्म-चक्र निरन्तर और पिस रहे हैं हम दिन और रात के इन दो पाटों के बीच। ज्ञानी समझा रहे है, हम अनसुना कर रहे है। कहाँ है हमें अवकाश कि उनकी इस आवाज को सुनें और अपना जीवन सार्थक करें। न हम सोच रहे हैं, न संभल रहे है। राग-द्वेष के विनाशकारी भँवरों में फँसी हमारी नाव डूबने को है, फिर भी हम नहीं कर पा रहे हैं आत्मावलोकन, नहीं कर पा रहे हैं भेद, देह में, विदेह में, जड़ में, चेतन में, काया में, आत्मा में। देखें इस चित्र की ओर जो कह रहा है : 'मैं शरीर में हूँ, मै शरीर नहीं हूँ।' रुकें हम, सोचें उनके इस अनमोल वचन पर और चिन्तन करें कि हमें वह मिल गया है जिसकी खोज़ में हम जन्म-जन्मान्तर से रहे हैं। वह धर्म हाथ आ गया है जो संप्रदाय, जाति, वर्ण जैसे कटघरों से दूर रहकर परम वीतरागता और मानवता को प्रतिष्ठित करता है।

अब हम जीत गए

दादावाड़ी, जयपुर
फरवरी, सन् १९८०

समरसता

'धन्य है जिन-शासन। कृतज्ञ हूँ उस महावीर वाणी की। उपकृत किया है मुझे उन परम प्रभु ने। अकारण ही वे करुणावान/कृपावन्त हुए हैं मुझ पर, जिन्होंने मुझे जीवन की कला का साक्षात्कार कराया है।'

उस समय निजता का समस्त वैभव उनके मुखमण्डल पर छा गया। उनके इर्द-गिर्द एक अद्‌भुत प्रभावलय खींच गया था। उनकी वह 'व्याधि- में-समाधि' अलौकिक थी- वर्णन से परे, शब्दातीत। अपूर्व थी वह आत्मदशा। उनकी देह बर्फ सी सफेद पड़ गई थी। लगने लगा था जैसे कोई हिमाच्छादित शिखर शताब्दियों से तपस्यारत है। तन पर व्याधि का प्रभाव था- किन्तु मन पर नहीं। व्याधि की चरमसीमा भी जब मन को प्रभावित नहीं कर सकी तब उनके मुख से सहज शब्द फूट पड़े थे, "अब हम जीत गए"।

समतामूर्ति

तन में व्याधि, मन में समाधि

हाथ में माला, आँखों में असीम धीरज, पलकों पर माध्यस्थ भाव, और वक्षस्थल पर पाँच-छह किलो वज़न की निरन्तर रिसती गाँठा दर्शनार्थी आ रहे है, जा रहे है, कड़कड़ाती सर्दी, ठिठुरती ठंड, उनका पाट भी वस्त्रों से आच्छादित है। इस बीच पाठशाला की एक चपरासन ने पुकारा है: "माताजी मुझे दर्शन चाहिये।" समीप खड़ी एक शिष्या ने कहा है, "अभी नहीं फिर।" सुन लिया है जगदम्बे ने यह स्वर, करुणा में नहायीं-डूबीं वे बोलीं, "आओ, माँ आओ।" करुणा की ऐसी जीती-जागती जीवन्त प्रतिमा को देख चपरासन धन्य हो उठी है। उसके रोम-रोम में बनी आँखे डबडबा आयी है। वह श्रद्धा में झुकी, और लौट पड़ी है। साध्वीजी शिष्या से कह रही है: "लोग कितनी उत्कण्ठा से यहाँ आते है, उन्हे निराश करना ठीक नहीं है।" इतनी असह्य वेदना में भी उन्हें इस तरह स्थितप्रज्ञ देख अचम्भे में थे लोग- नितान्त स्तब्ध।

माँ मृत्युंजया

जयपुर- १ दिसंबर, १९७९

आत्मलीन

चली आ रही है वे क़दम-दर-क़दम। कैंसर-व्याधि ने प्रचण्ड रूप ग्रहण कर लिया है। वे अपने हाथों में कामली संभाले बढी आ रही हैं प्रवचन मंच की ओर। उनका यह हौसला देख व्याधि स्वयं असमंजस में है, स्तब्ध है। चौंकी हुई है मौत। वह इस माँ-मृत्युंजया के सम्मुख ससंकोच सकपकायी सी खड़ी है, यह सोचते कि कौन है इस जगत में जो मुझसे आतंकित नहीं है पर यह तो अभीत, उन्मुक्त, निःसंकोच चली आ रही है मुझ तक। सहसा रोशनी की लहरें जिस पर होड़ लगाये है – उस समंदर को उसने प्रणाम किये और पास ही दुबक कर उनके दर्शनार्थ खड़ी हो गयी। सुना उसने: मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा अमर है। मैं आत्मा हूँ। मैं अमर हूँ।

अंतिम-प्रवचन

दीक्षा-प्रसंग

दीक्षा-मंच पर वे आ पहुँची हैं और अपनी शिष्या-मण्डली के बीच ऐसे सुशोभित हैं जैसे पर्वतश्रेणियों के बीच कोई गगनचुम्बी शिखर। सरला और हेमलता की दीक्षा के मंगलमय क्षण हैं। कैंसर की वेदना अपनी चरम सीमा पर है। पण्डाल खचाखच है। सभी पपीहे की तरह उद्ग्रीव, गर्दन ऊँची किये, उनकी शब्द-स्वाति के लिए लालायित हैं। उनके अन्तिम सार्वजनिक शब्द हैं, "हमें आत्मकल्याण के लिए प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि जितनी-जितनी शुद्धि होगी, उतनी-उतनी सिद्धि भी निकट आयेगी।"

उनकी एक गीत-पंक्ति आज भी वहाँ प्रतिध्वनित है: 'रुड़ा राजमहल ने त्यागी, पेलो चाल्यो रे जाए वीतरागी, अेनो आतम उठ्यो छे आज जागी'।

अन्तिम दर्शन

जयपुर दादावाड़ी- सन् १९८०

वह नयन-निधि, अब कहाँ?

१८ अप्रेल, १९८०, शुक्रवार, वैशाख शुक्ल ४, वि.सं. २०३७ दोपहर बारह बजे का समय था। वे साधना के सर्वोच्च शिखर पर विद्यमान थीं। प्रत्याख्यान आदि सारी लौकिकताएँ सम्पन्न हो रही थीं। हम सब तराई में खड़े थे और वे पर्वत के सर्वोन्नत शिखर पर विजयपताका लहराने की तैयारी में थीं।

सूरज आकाश के ठीक बीचो-बीच आने को था। उन्होंने अपना प्रशस्त चरण शिखर पर रख दिया। देह से भिन्न- वे परमज्योति में लीन हो गयीं। भक्त-आराधक सब खड़े थे और खड़े रह गये और भर दुपहरी में सूर्यास्त हो गया।

एक अनभ्र-दुस्सह वज्रपात हुआ सब पर। सबके मनःप्राण जल-बिन-मीन की भाँति छटपटा रहे थे। सबकी आँखे उन्हें ढूँढ रही थीं, पर अब वह नयन-निधि कहाँ थी। हजारों-हजार मन विकल थे, आँखे अश्रुपूरित थीं तथा पाँव बढ चले थे- मोहनबाड़ी की ओर- जहाँ था 'अन्तिम संस्कार'।

जयपुर उनके लिए सचमुच 'जय' 'पुर' बन गया और सबके लिए एक अप्रतिम तीर्थस्थल।

"श्री विचक्षण श्री स्मारक"

मोहन बाड़ी, गलता रोड़, जयपुर (राज.)

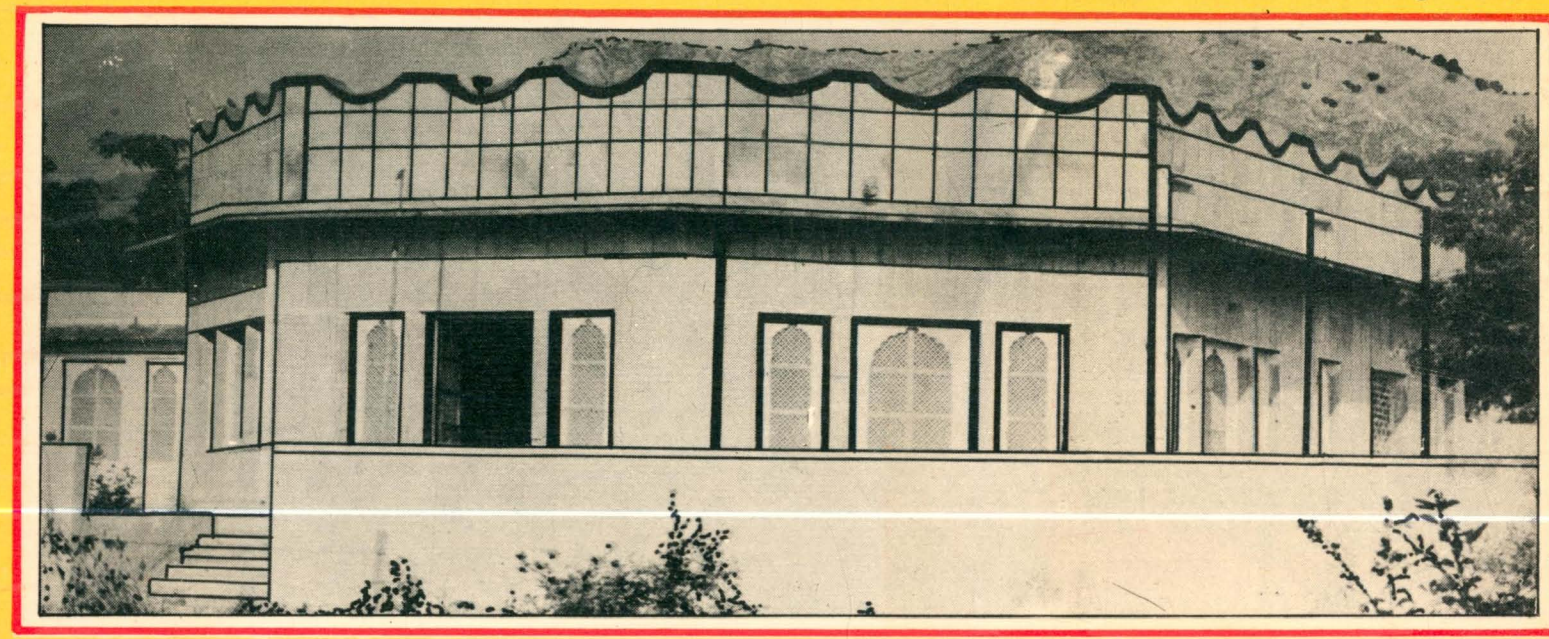

परम-पावन समाधि स्थल

"प्रणाम उस परमज्योति को। प्रणाम उस प्रणम्यों-की-प्रणम्य महान विभूति को जो कालजयी है।" उनकी इस समाधि में से आज भी स्वर उठ रहा है: 'मोह छोड़ो : शरीर, शरीर है; आत्मा, आत्मा है। हम शरीर नहीं हैं, शरीर में हम हैं। मकान को अपना अन्तिम मुकाम मत मानो।मकान केप्रति अनासक्त बनो। शरीर में से आत्मभाव को त्यागो।'

पुष्पाञ्जलि –

परमपूज्या गुरूवर्या जड़-चेतन भेद विज्ञानी स्व.प्र. श्री.विचक्षणश्री जी म.सा. की विदूषी शिष्या मरूधरज्योति, प्रखर, व्याख्यात्री पू. साध्वी श्री मणिप्रभाश्री जी एवं. पू. श्री विद्युतप्रभाश्री जी. पू. श्री हेमप्रज्ञाश्री जी, पू. श्री मृदुलाश्री जी का चातुर्मास सन् १९८५ में नागपुर शहर में हुआ।

साध्वीश्री जी के सत्संग का लाभ जैन समाज के सभी सम्प्रदायों के साथ-साथ जैनेतर समाज के लोगों ने भी बहुत लिया। अहिंसा भवन इतवारी, गाँधीबाग, श्री अजितनाथ उपाश्रय, श्री गीतामंदिर, श्री महावीर नगर, श्री परवारपुरा दिगम्बर जैनमंदिर, सदर क्षेत्र, पश्चिम नागपुर आदि स्थानों पर भी आप श्री के प्रवचनों की अपूर्व धूम रही। आपके उपदेशों से प्रेरणा पाकर २१ मासक्षमण आदि अनेक प्रकार की तपस्याएँ हुईं। साथ ही नवान्हिका महोत्सव, अक्षयनिधि तप, पर्यूषण पर्वाराधन एवं आयम्बिल ओली तप आदि का भी भव्य आयोजन हुआ। आप श्री के प्रवचनों से प्रेरित होकर अनेक रचनात्मक योजनाओं का शुभारम्भ हुआ। जैसे धाड़ीवाल धर्मशाला का-श्री अजितनाथ जैन मंदिर ट्रस्ट में विलीनिकरण, गोलेछा ट्रस्ट द्वारा प्रदत्त भूमि पर श्री जिनमन्दिर तथा दादाबाड़ी का शिलान्यास, पारडी जिनमन्दिर का जीर्णोद्धार तथा इन्दौरा दादाबाड़ी की व्यवस्था हेतु साध्वीश्री जी के अनेकों उपयोगी सुझावों का शीघ्र ही क्रियान्वित करने का निर्णय लिया गया। आपके सान्निध्य में तपस्वियों का सम्मान, अतिथि सत्कार आदि अनेक शुभ प्रवृत्तियों में संघ की त्रिविधशक्ति का सदुपयोग हुआ।

साध्वीश्री के चातुर्मास का लाभ मिलना अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। नागपुर नगर में इस चातुर्मास की स्मृति सदा-सर्वथा बनी रहेगी।

आत्मज्ञानी साधिका स्व. प्र.श्री विचक्षणश्री जी म.सा. के जयपुर स्थित समाधि-स्थल पर उनकी मूर्ति-स्थापना के अवसर पर साध्वी श्री मणिप्रभाश्री जी से प्रेरणा पाकर श्री ओसवाल पंचायती द्वारा संचालित श्री अजितनाथ जैन श्वेताम्बर मंदिर ट्रस्ट, नागपुर के श्री ज्ञान खाते की राशि से स्व. प्रवर्तिनी श्री विचक्षणश्री जी म.सा. के उपलब्ध चित्रों का संकलन "आचरण में आगम" नामक पुस्तक प्रकाशित कर नागपुर संघ स्व. प्रवर्तिनी श्री जी के चरणों में श्रद्धा-सुमन अर्पण कर रहा है।

श्री अजितनाथ जैन श्वेतांबर
मंदिर ट्रस्ट, नागपुर

दि. १३ मार्च, १९८६

प्रकाशक : श्री अजितनाथ जैन श्वेतांबर मंदिर ट्रस्ट, नागपुर। मूल्य २५ रूपये

अवशेष

श्री विचक्षण श्री जी महाराज सा. के पत्रों के कुछ अंश

"यह जन्म दिन इस शरीर का है। शरीर में स्थित आत्मा का जन्म दिन अजरत्व का दिन मोक्ष प्राप्त करने का दिन नहीं गिना जाता है मैं उस दिन की मंगल भावना करती हूं आप सब के घर में भी आत्मा का अपने घर में जन्म हो और सदा के लिये अमर हो यह शुभ आशीर्वाद है

स्वयं को भी आशीर्वाद देती हूं
आप सब को भी देती हूं
आप सब जिन ने स्वर्गवास के शासन से ही उनकी परम कृपा से ही इतनी ऊंची स्थिति पाई है अतः उनके चरणों में सदा तन मन धन वचन एवं सर्वस्व समर्पित करना है"

जयपुर, आषाढ़ बदी १, २०३३ वि.सं.

यह कैसी चिंता जड़ चेतन
चिंता के लिये है या चिंता
लिखे है आत्म धारी बाहर नहीं
है पुस्तक में नहीं है स्वयं में ही है"

"मानव जीवन सर्व जीवनों में विशिष्ट जीवन है। इसकी प्रमाणिकता तो इसीसे प्रकट होती है कि- जैन बौद्ध, वैष्णव, आदि सर्व आस्तिक धर्मों के सिद्धान्तों ने एक आवाज से इसके यशोगान गाये हैं।

इस विशिष्ट जीवन का एक पल भी महार्घ कीमती है क्योंकि एक पल भर भी किया गया प्रभु स्मरण अगणित पुण्य का संग्रह कर सकता है। धन असंख्य कोटि देने पर भी गया वक्त फिर हाथ नहीं आता है।"

विचक्षण श्री

"मैं आनंद में हूं कर्म उदय
भाव का अभ्यास
मेरे का सब
है संसार
धी मनीराम
न आवे यही विवेक"

मुद्रण व कला व्यवस्था – कोठारी ब्लॉकमेकर्स, नई शुक्रवारी, नागपुर (फोन नं. ४३८५८)